पार्थ के नाथ केशव

श्रीमद्भगवद्गीता का हिन्दी अनुवाद

श्रद्धांजलि शुक्ला 'अंजन'

पार्थ के नाथ केशव
श्रद्धांजलि शुक्ला 'अंजन'

उत्कर्ष प्रकाशन

पार्थ के नाथ केशव

(श्रीमद्भगवद्गीता का हिन्दी अनुवाद)

भाग-1

श्रद्धांजलि शुक्ला 'अंजन'

उत्कर्ष प्रकाशन

ISBN: 978-81-969583-0-5

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक एवं प्रकाशक : **उत्कर्ष प्रकाशन**
मुख्य कार्यालयः
142, शाक्य पुरी, कंकरखेड़ा,
मेरठ कैन्ट-250001 (उ0प्र0)
फोनः 8791681996, 9897713037
प्रशासनिक कार्यालयः
लोहिया गली-4, बाबरपुर, शाहदरा, दिल्ली-110094
फोनः 8218114205, 8923302958

ई-मेल : uttkarshprakashan@gmail.com
वेबसाइट : utkarshprakashan.in
प्रथम संस्करण : 2024
मूल्य : ₹ 150
रचनाकार : **श्रद्धांजलि शुक्ला 'अंजन'**

नोटः पुस्तक सम्बन्धित किसी भी प्रकार के विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र केवल मेरठ (उ.प्र.) मान्य होगा।

समर्पण

जब जब चले 'अंजन' कलम, नाम कृष्ण का आए।
जब जब कागज चित्र बने, रूप श्याम का लाए।।
उसके चरणों प्रीत बढ़े, रसना हरि हर गाए–
रक्त श्याम बन दौड़े तन, श्वांस–श्वांस हरि पाए।।

हे कृष्ण मेरे द्वारा जो लिखा गया है वह आपके द्वारा ही लिखाया गया है, मैं इस लेख का हर शब्द, हर भाव आपके श्रीचरणों में समर्पित करती हूँ। मैं एक अत्यंत तुच्छ देह के साथ नित्य आपका सुमिरन करती रहती हूँ और इसी भाव के साथ मैंने 'श्री कृष्ण अर्जुन सम्वाद' को अपने शब्दों में लिखने का प्रयास किया है जिसमें बहुत सी कमियाँ हो सकती हैं परंतु मेरे भाव सिर्फ और सिर्फ आपके चरणों में समर्पित हैं।

हे कृष्ण मेरे प्रभु मेरे द्वारा रचित इस लेख को अपना आशीर्वाद प्रदान कीजिए और मुझे कृतार्थ कीजिए। कहते हैं गीता पढ़ने और सुनने से मोक्ष की प्राप्ति होती है परंतु मुझे मोक्ष नहीं चाहिए मुझे हर जन्म आपकी भक्ति आपका प्रेम चाहिए।

दुनिया में हर प्राणी की कोई न कोई मनोकामना अवश्य होती है मुझे इच्छा मृत्यु चाहिए–

पावन तिथि एकादशी, हों भोर भए स्नान।
पीत वस्त्र धारण करूँ, कर दूँ थोड़ा दान।
कर दूँ थोड़ा दान, आसनी पास बिछा लूँ।
करके पूजन पाठ, कृष्ण को तिलक लगा दूँ।
उस क्षण आए काल, कृष्ण सुन मेरे आँगन।
अंतिम क्षण यह रूप, दिखाना मुझको पावन।।

हे कृष्ण मैंने प्रतिपल आपको महसूस किया है सदैव आपको अपने साथ पाया है मेरी हर मांग को आपने पूरा किया है।

मेरी पुस्तक **'पार्थ के नाथ केशव'** को अपने चरणों में स्थान दीजिए...।

श्रद्धांजलि शुक्ला 'अंजन'

भूमिका

श्रीमद्भगवद्गीता विश्व का एक ऐसा धार्मिक ग्रन्थ जिसे पढ़कर मनुष्य के सभी कष्टों का अंत हो जाये। बहुत लोग इसका पठन–पाठन करते हैं किन्तु उनके दुःख–दर्द जाते नहीं, ऐसा क्यों ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर सभी चाहते हैं सभी को जानना चाहिए। दरअसल श्रीमद्भगवद्गीता के एक एक शब्द एक–एक पंक्ति के कई–कई अर्थ होते हैं जिन्हें समझना इतना आसान नहीं है। लोग पढ़ तो लेते हैं किन्तु उसका सभी अर्थ नहीं समझ पाते तो फिर उसे अपने जीवन का अंग कैसे बनायेंगे भला। वास्तव में यह ग्रन्थ विज्ञान की कसौटी पर भी खरा उतरा है, खरा उतर रहा है। हां, जो लोग इसके गूढ़ अर्थ–रहस्य को समझ लेते हैं उनकी नैया पार हो जाती है सब दुःख–दर्द मिट जाते हैं।

प्रस्तुत काव्य कृति में विद्वान रचयिता धार्मिक प्रवृत्ति की श्रीमती श्रद्धांजलि शुक्ला 'अंजन' ने श्रीमतद्भगवदगीता को बहुत ही सहज–सरल भाषा–शैली में समझाने का प्रयास किया है ताकि अधिक से अधिक लोग इसका लाभ उठा सकें, इसके अर्थ को अपने जीवन में उतार सकें। इस पुस्तक का उद्देश्य ही यही है कि अधिक लोग श्रीमद्भगवदगीता के गूढ रहस्यों को जान सकें और उनसे लाभान्वित हो सकें। भगवान श्रीकृष्ण ने युद्धभूमि में अर्जुन को जो उपदेश दिये उनका अर्थ बहुत ही सरलता के साथ यहां प्रस्तुत किया गया है।

'पार्थ के नाथ केशव' के इस प्रथम भाग में रचयिता ने

श्रीमदभगवदगीता के कुछ अध्यायों को अनुवादित कर पाठकों को अधिक से अधिक जानकारी देने का प्रयास किया है। इसके पश्चात इसका द्वितीय भाग प्रस्तुत किया जायेगा।

कलमकार श्रद्धांजलि शुक्ला के इस प्रयास की प्रशंसा की जानी चाहिए निश्चय ही यह पुस्तक धार्मिक काव्य पुस्तकों के संसार में अपना स्थान निश्चित करने में सफल हो, ऐसी मेरी आशा और विश्वास है।

मंगल सिंह 'मंगल'

वरिष्ठ कवि एवं साहित्यकार

(20 पुस्तकों के रचयिता)

***

नाथ कृपा ऐसी करो, मिट जाए हिय द्वंद।
पार्थ खड़ा कर जोड़ के, खोलो मति ये बंद।
लड़ लूँ मैं रणभूमि में, लेकर कौशल शस्त्र।
मिट जाए हिय मोह ये, आज उठा लूँ अस्त्र।
ज्ञान मिले जीवंत हो, मेरी प्रज्ञा मंद।
नाथ कृपा.....

पाप पुण्य के मध्य में, भटक रहा ये पार्थ।
लगता क्यूँ केशव मुझे, युद्ध रचा निज स्वार्थ।
मैं भँवरा भूखण्ड का, लोभ बना मकरंद।
नाथ कृपा.....

डोल रहा मैं मध्य में,जा बैठूँ किस ओर।
अंधकार चहुँओर है, कब आएगी भोर।
घोर अँधेरा नेत्र में, शेष नहीं है संद।
नाथ कृपा.....

अध्याय–01

1) करें व्यास से प्रार्थना, नेत्रहीन धृतराष्ट्र।
दर्शन करना चाहते, रण–स्थल घटित स्वराष्ट्र।।

2) दिव्य अलौकिक दृष्टि दी, संजय देखें दूर।
जो होते कुरुक्षेत्र में, कहते नित्य जरूर।।

3) सेनाएँ अब युद्ध में, रचतीं व्यूह महान।
पाण्डव सर्व महारथी, कौशल युद्ध विधान।।

4) बलशाली हैं भीष्म जो, दुर्योधन के संग।
कृपाचार्य सह कर्ण भी, देते विजय तरंग।।

5) अश्वत्थामा, भीष्म हैं, भुरिश्रवा वो कर्ण।
सैन्य–कुशल योद्धा सभी, जिनके संग विकर्ण।।

6) पाण्डव भी सज्जित हुए, शस्त्र लिए महराज।
अर्जुन, सात्यकि, भीम भी, सैन्य बीच ले साज।।

7) द्रुपद विराट महारथी, पुरुजित कुंतिभोज।
पराक्रमी अभिमन्यु हैं, रण कौशल मयओज।।

8) भीष्म पितामह को लगे, कम सैनिक हैं प्राप्त।
रक्षित सेना भीम की, नाथ अधिक पर्याप्त।।

9) भीष्म पितामह की करें, रक्षा सब चहुँओर।
सिंहनाद कर भीष्म का, शंख मचाता शोर।।

10) शंखनाद पश्चात ही, उत्तम रथ आरूढ़।
केशव एवं पार्थ भी, शंख बजाते गूढ़।।

11) पार्थ वचन सुन सैन्य के, बीच खड़े भगवान।
बोले देखो पार्थ ये, मानुष का अज्ञान।।

12) अर्जुन व्याकुल शोक से, कहते नाते देख।
होनी ने क्या रच दिया, भाग्य लिखे क्या लेख।।

13) अभिलाषी हैं युद्ध के, सारे वीर समाज।
शिथिल हो रहे अंग हैं, देख स्वजन को आज।।

14) गिरता है गांडीव भी, जलती मेरी देह।
सहने में असमर्थ हूँ, भ्रमित हुई है गेह।।

15) किसका है कल्याण ये, जिसमें दिखता श्राप।
जीत मिले जो अश्रु से, इससे तो है पाप।।

16) पाञ्जन्य श्रीकृष्ण का, देवदत्त श्रीपार्थ।
भीमसेन पौण्ड्रक बजा, युद्ध रचें परमार्थ।।

17) राजा अनंत विजय ले, लेकर नकुल सुघोष।
मणिपुष्पक सहदेव से, जता रहे अति रोष।।

18) कुशल महारथ शंख ले, करते गर्जन नाद।
धरती, नभ, कौरव हुए, शिथिल शोर के बाद।।

19) कहते अर्जुन कृष्ण से, गांडीव लिए हाथ।
सैन्य मध्य रथ ले चलें, पक्ष दिखें दो साथ ।।

20) दुर्योधन दुर्बुद्धि के, कौन खड़े हैं संग।
इच्छुक हूँ मैं देखने, बदले सबके रंग ।।

21) चाह नहीं अब जीत की, शेष नहीं है मोह।
राज्य मिले जो दाह से, कैसे हो आरोह।।

22) राज्य भोग जिनके लिए, वो ही आज समक्ष।
सारे मेरे युद्ध में, दिखे हानि प्रत्यक्ष।।

23) हे मधुसूदन देख ये, नहीं युद्ध की चाह।
अपनों की मृत देह से, कैसे चुन लूँ राह।।

24) मार पुत्र धृतराष्ट्र के, मिल जाएगा पाप।
अर्जुन मार कुटुम्ब को, पाएगा बस श्राप।।

25) दुर्योधन दुर्बुद्धि है, मान लिया हे नाथ।
फिर भी वध से दुष्ट के, दूषित होंगे हाथ।।

30) दाहक, विष दायक, छली, शस्त्र लिए जो हाथ।
पत्नी हर्ता चोर का, ठीक नहीं वध नाथ।।

31) वशीभूत हो लोभ के, कर डालूँ अपकर्म।
कुल–नाशी कहला सदा, याद करेगा धर्म।।

32) माधव पाप–अधर्म से, दूषित होगी नार।
नर्क–भोग कुल घात से, संतान निराधार।।

33) संकरता यह वर्ण की, लाती है संताप।
धर्म सनातन लुप्त हो, छा जाता कुल–पाप।।

34) इस कुलनाशी कर्म से, नर्क मिले बहु काल।
राज्य–भोग के लोभ में, नीचा होगा भाल।।

35) इससे तो है ये भला, बैरी मुझको मार।
धर्म बचे निज वंश का, होवे शुभ उपकार।।

36) होकर व्याकुल भाव से, छेड़े हिय के राग।
रथ के पीछे बैठते, अस्त्र–शस्त्र को त्याग।।

37) देख रहे हैं कृष्ण ये, व्याकुल से दो नैन।
कैसे हिय उपचार हो, कैसे पाए चैन।।

38) जिस अर्जुन की रथ ध्वजा, बैठे हैं हनुमान।
वो साधक तो उच्च है, पाने गीता ज्ञान।।

39) गुरुवर होंगे कृष्ण–से, शिष्य बनेंगे पार्थ।
अद्‌भुत इस संयोग से, हट जाएगा स्वार्थ।।

40) इन ज्ञानी गुरु–शिष्य का, मेल बना आधार।
जिससे जग को मिल गया, अनुपम गीता सार।।

□□□

इस पार्थ के हिय मोह मोहन, देखिए न विशेष है।
टलती नहीं ममता सखा सुन, मोह में अनिमेष है।
गर युद्ध है कुछ प्राप्ति कारण, नाश को फिर रोक लो।
कर दान दो इस भूमि को हरि, क्यूँ अकारण शोक लो।
धन छोड़ दो परिवार के हित, लोभ तो हिय द्वेष है।
इस पार्थ.....

कुछ भ्रात हैं कुछ तात हैं हरि, हैं पितामह सामने।
गुरु द्रोण से लड़ना भयानक,क्या करूँ सब रोकने।
जिस ओर आकर है खड़ा तन, यूँ लगे मन मेष है।
इस पार्थ.....

तन आज अर्जुन देखते तुम, मोह के परदे चढ़ा।
कर स्थापना अब धर्म की सुन, युद्ध है हमने गढ़ा।
तुम हो न व्याकुल देखके तन, आत्म में बस भेष है।
इस पार्थ.....

अध्याय–2

1) इस असमय के शोक का, क्या कारण है पार्थ।
तेरे मन के मोह का, कारण है निज स्वार्थ।।

2) हे अर्जुन अब सज्ज हो, कायरता को त्याग।
दुर्बलता हितकर नहीं, अंतर से अब जाग।।

2) कायरता मुझमें नहीं, हे मधुसूदन श्याम।
पूजनीय सम्मुख खड़े, चाहूँ अल्पविराम।।

3) रुधिर मिले इस राज्य में, क्या होगा सुख भोग।
बंधु जनों की भेंट से, उपजेंगे हिय रोग।।

5) भ्रात जनों को मार के, जीना है बेकार।
राज लोभ का मोह भी, लगता है व्यभिचार।।

6) कायरता के दोष से, कर दो केशव दूर।
धर्म–विषय के मोह से, है अर्जुन यह चूर।।

7) क्या अच्छा है क्या बुरा, मार्ग दिखाओ मित्र।
सकल हृदय में स्पष्टता, ज्ञान बने अब इत्र ।।

8) शिष्य बना लो साँवरे, शरण रखो अब नाथ।
पार्थ पथिक भटका हुआ, आप बढ़ा दो हाथ।।

9) स्वजनों से मुझको मिला, दुख जीवन पर्यन्त।
ज्ञान चक्षु अब खोल दो, कर दो विष का अंत।।

10) घोर विलासी इंद्रियाँ, पल–पल करतीं क्षीण।
मृग–सा मन विचलित हुआ, कैसे होऊँ उऋण।।

11) कृष्ण कहें हँसते हुए, सुन ये सत्य अपार।
पंडित जन रोते नहीं, मौत खड़ी हो द्वार।।

12) शोक नहीं करते कभी, मिट जाए जो देह।
नाशवान है ये सदा, देह जीव का गेह।।

13) तुम–हम हैं आरंभ से, अमिट यही है पंत।
आना जाना चक्र है, इसका नहीं है अंत।।

14) तीन अवस्था ज्यों मिले, बाल युवा अरु वृद्ध।
वैसे ही नव तन मिले, सूत्र यही जग सिद्ध।।

15) सुख–दुख के संयोग से, उपजा मन में शोक।
दूर करो इस मोह को, अंतरमन को रोक।।

16) पुरुष श्रेष्ठ को ये नहीं, व्याकुल करते भोग।
मोक्ष दिशा को मोड़ते, विषयों के संयोग।।

17) असत् वस्तु सत्ता नहीं, सत् का नहीं अभाव।
कर्म–विधा में लीन हो, पा लो कर्म लगाव।।

18) नाश–रहित हर दृश्य है, जो भी जग में व्याप्त।
अविनाशी जग नाश को, वीर नहीं पर्याप्त।।

19) जीवात्मा के देह का, होता ही है अंत।
शोक नहीं करते कभी, मृत होने का संत।।

20) जो समझे इसको मरा, या फिर मारन हार।
दोनों ही जानें नहीं, आत्मा का सुविचार।।

21) नित्य सनातन रूप ये, जन्म–मृत्यु से मुक्त।
आत्मा तो हर काल में, है ईश्वर से युक्त।।

22) लोग पुराने वस्त्र का, करके जैसे त्याग।
धारण कर नव वस्त्र को, भरते हिय अनुराग।।

23) वैसे ही इस गेह को, मिलता है नव देह।
धारण कर नव देह को, नूतन लगती गेह।।

24) शस्त्र नहीं काटे इसे, सोंखे नहीं समीर।
ज्वाला से जलती नहीं, गला सके कब नीर।।

25) यह अच्छेद्य अदाह्य है, है अक्लेद्य अशोष्य।
सर्वव्याप्त यह नित्य है, ईश्वर द्वारा पोष्य।।

26) आत्मा तो अव्यक्त है, आत्मा पूर्ण अचिन्त्य।
यह विकार से रहित है, सत्य यही है कथ्य।।

27) जन्म मरण यदि मान लो, फिर भी हिय को रोक।
हे अर्जुन शोभित नहीं, तेरे हिय को शोक।।

28) जन्मे को मरना पड़े, मरकर आते लोग।
प्रकटन–अप्रकट मध्य में, भोगे तन नित भोग।।

29) कोई तन पोषित करे, कोई जाने तत्त्व।
प्राणी ये सच जान ले, देह नहीं है सत्त्व।।

30) आत्मा पार्थ अवध्य है, जान सखा यह मर्म।
त्याग अभी इस शोक को, सम्मुख तेरे धर्म।।

31 अ) धर्मयुक्त है युद्ध ही, सब क्षत्री का धर्म।
अर्जुन अब भयमुक्त हो, कर कल्याण सुकर्म।।

31 ब) स्वर्ग प्रदायक युद्ध ये, भाग्यवान को प्राप्त।
सज्ज रहो क्षत्रिय बने, कर्म करो पर्याप्त ।।

32) युद्ध नहीं तुमने किया, यदि होगा फिर पाप।
धूमिल होगी कीर्ति भी, जीवन होगा श्राप।।

33) अर्जुन ये अपकीर्ति भी, हो जग में बहु काल।
लघुता होगी वीर ये, जन्मान्तर तक भाल।।

34) भय से पीछे हट गया, समझेंगे सब लोग।
निंदा हो सामर्थ्य की, मत लाओ संयोग।।

35) मारा जा तू युद्ध में, अथवा इसको जीत।
पीछे हट संग्राम से, कहला मत भयभीत।।

36) लाभ–हानि को मान ले, अर्जुन एक समान।
हार मिले या जीत जा, हो तेरा उत्थान।।

37) फल की चिंता त्याग के, कर लेगा जो युद्ध।
पा लेगा तू पुण्य को, आत्मा होगी शुद्ध।।

38) ज्ञानयोग मैंने कहा, कर्मयोग तू मान।
कर्म–त्याग यदि कर दिया, नष्ट हुआ सब जान।।

39) नाश नहीं है बीज का, दोष नहीं है पार्थ।
कर्मयोग से धर्म का, रक्षक बन तज स्वार्थ।।

40) निश्चयात्मिका बुद्धि हो, कर्मयोग की एक।
पर नासमझ सकाम की, बुद्धि रहे अतिरेक।।

41) वेद–वाक्य के ज्ञान से, पाना चाहे स्वर्ग।
कुछ लोगों के ही लिए, सब कुछ है अपवर्ग।।

42) भोग–विलासी खोजते, जीवन का आनन्द।
सब फल का पीछा करें, ज्यों भँवरा मकरंद।।

43) मत पड़ तू जग लोभ में, करता जा तू कर्म।
तू अपने इस जन्म का, पा लेगा फिर मर्म।।

44) फल की चिंता त्याग के, करता जा तू कर्म।
कर्म करे निष्काम तू, यह तेरा निज धर्म।।

45) तजकर तू आसक्ति को, बुद्धि रखे जो धीर।
अर्जुन भाव समत्व से, बन जाएगा वीर।।

46) रक्षण कर समबुद्धि का, तज कर कर्म सकाम।
बुद्धियोग में लिप्त हो, कर तू जग में नाम।।

47) पाप–पुण्य से मुक्त हो, कर्म–बंध को त्याग।
ऐसे समत्वरूप से, अंतः तक अब जाग।।

48) कर्म–बंध को त्याग के, निर्विकार को जान।
जन्मरूप इस बंध से, मुक्त करे यह ज्ञान।।

49) मोहरूप इस पंक को, कर लेगा जब पार।
परलोकी इस भोग से, होगा फिर उद्धार।।

50) पा लेगा वैराग्य तू ,कर हरि से संयोग।
स्थिर करके जब बुद्धि को, तज देगा हर भोग।।

51) पार्थ हृदय के मोह को, जिस क्षण देगा त्याग।
उस क्षण ए मेरे सखा, पा लेगा वैराग।।

52) क्षीण हुई यह बुद्धि भी, होगी तीव्र सुजान।
परमात्मा के मेल का, हो जाएगा ज्ञान।।

53) पार्थ कहें श्रीकृष्ण से, कैसे होगा ज्ञान।
कैसे जन स्थिरबुद्धि को, मैं लूँगा पहचान।।

54) जिस क्षण तज के कामना, कर्म बने है यज्ञ।
हे अर्जुन उस काल में, होते जन स्थितप्रज्ञ।।

55) सुख–दुख भय अरु क्रोध ये, हो जाते जब नष्ट।
ऐसे में मुनि श्रेष्ठ हो, सुखद लगे जब कष्ट।।

56) स्नेहरहित सर्वत्र हो, द्वेष नहीं हो पास।
भावमुक्त जन ही सदा, लेता निर्मल स्वास।।

57) कच्छप जैसे अंग को, भीतर करता बंद।
वैसे ही तू मोह को, करता जा अब मंद।।

58) मानव जो स्थितप्रज्ञ हो, करता साक्षात्कार।
विषय भोग को त्याग के,पाता जीवन सार।।

59) आसक्ति नहीं त्यागते, जो नर पाकर ज्ञान।
हर लेती हैं इंद्रियाँ, उनका भी उत्थान।।

60) स्थिर जन को ये चाहिए, पाने सच्चा ज्ञान।
सम्मुख मेरे बैठ के, करता जाए ध्यान।।

61) विषयों की आसक्ति में, हो जाए अवरोध।
पूर्ण नहीं हो कामना, तो आ जाता क्रोध।।

62) क्रोध बढ़ाए मूढ़ता, खोती बुद्धि विवेक।
ज्ञान कहीं दिखता नहीं, लोभ कपट अतिरेक।।

63) साधक जो मन से करे, वश में जीवन काम।
प्रसन्नता को प्राप्त हो, उसके मन का धाम।।

64) परमात्मा को जानता, स्थिर रखता चित्त।
उस जन के आगे झुके, सुन ले पार्थ निमित्त।।

65) मन से हारे को नहीं, शेष बचे है भाव।
भाव रहित पाता यहाँ, जीवन भर अलगाव।।

66) जैसे जल में नाव को, वायु हरे है नित्य।
वैसे हरता बुद्धि को, मानव का निज कृत्य।।

67) योगी जागे रात में, सोए जब संसार।
परमात्मा की चाह में, सुख लगते बेकार।।

68) ज्यों सागर लेता समा, नदियों का हर वेग।
विषय रहे यों प्रज्ञ में, ज्यों मुट्ठी में रेग।।

69) पा लेता है शांति को, करता है जो त्याग।
सुख द्वेष अहंकार छल,जो त्यागे अनुराग।।

70) ब्रह्म प्राप्ति की ये दशा, हर लेती है मोह।
ये ही ब्रह्मनंद है, जिससे सुख की टोह।।

□□□

सुन कर के तेरे वचनों को, मेरा मन हर्षाया है।
हे केशव इन ज्ञानपुंज में, सब संसार समाया है।

क्या होता है सत्य जगत का,सम्मुख आकर माना है।
इस धरती का इस धरती को, देकर सबको जाना है।
तू ही कर्ता धर्ता जग का,सब कुछ तेरा जाया है।
सुन कर है.....

तेरी माया का पर्दा है, जिसमें सब खो जाता है।
जो भी इसको भेद सका वो, तेरा ही हो जाता है।
तू ही लेता नित्य परीक्षा, मोहक जाल बिछाया है।
सुन कर है.....

मार सका है कौन किसी को, आत्मा तो अविनाशी है।
भ्रम है रिश्ते नाते सारे, माया ये आकाशी है।
मैं हूँ केवल एक खिलौना, समझ मुझे अब आया है।

अध्याय–3

1) केशव यदि तुम ज्ञान को,रखते कर्म प्रधान।
फिर मुझको इस कर्म का, क्यूँ करवाते ध्यान।।

2) द्विविधा गहराती रही,उत्तम है क्या कर्म।
मुझको इस भ्रम जाल का,समझा दो अब मर्म।।

3) हे अर्जुन निष्पाप सुन, निष्ठा के दो भेद।
ज्ञान–कर्म दो योग हैं, सार यही हर वेद।।

4) कर्म बिना निष्कर्मता, कर्म त्याग से सिद्धि ।
दोनों ही सम्भव नहीं, ज्ञान कर्म बिन रिद्धि।।

5)मानव तो हर काल में, कर्म हेतु है बाध्य।
हर क्षण उसका कर्म है, हर पल उसका साध्य।।

6) हठ से इंद्रिय रोक ले, विषयों पर रख ध्यान।
ऐसे मनुज असत्य का, निशदिन करते पान।।

7) वह जन अर्जुन श्रेष्ठ जो, कर्मयोग में लिप्त।
अनासक्त हो मन सदा, विषयों से हो रिक्त।।

8) शास्त्र विहित तू कर्म से, कर ले खुद को श्रेष्ठ।
कर्म करे निर्वाह हो, कर्म विधा है ज्येष्ठ।।

9) कर्म बिना आसक्ति के, इससे बंधन मुक्त।
जो फल की आशा करे, होता नित्य विलुप्त।।

10) ब्रह्म प्रजापति कल्प में, प्रजा रचे कर योग।
कहते जाओ यज्ञ से, इच्छित फल तू भोग।।

11) देवों की आराधना, कर लो यज्ञ विधान।
तुम सबका कल्याण हो, यज्ञ परम लो जान।।

12) हे अर्जुन वह चोर है, सिर्फ करे उपयोग।
देवों से जो भी मिले, अर्पण हो तब भोग।।

13) अन्न बचे जो यज्ञ से, करना उसका पान।
अन्न पकाए स्वार्थ को, पाप करे वह जान।।

14) प्राणी होते अन्न से, वर्षा से हो अन्न।
वर्षा होती यज्ञ से, कर्म यज्ञ संपन्न।।

15) कर्म विदित है वेद से, ईश्वर से है वेद।
सब कुछ मिलता यज्ञ से,पार्थ यही बस भेद।।

16) सृष्टिचक्र माने नहीं, खोजे केवल अर्थ।
वो नर नित पापायु हो, जीवन जीता व्यर्थ।।

17) आत्मा में जो रम गया, होकर के संतुष्ट।
फिर कर्तव्य उसे नहीं, जो आत्मा से पुष्ट।।

18) कर्म प्रयोजन खत्म हो, मिट जाता हर स्वार्थ।
जो समझे इस चक्र को, बन जाता परमार्थ।।

19) पार्थ सुनो तुम इसलिए, तज दो यह आसक्ति।
परमात्मा को प्राप्त हो, पाकर पूर्ण विरक्ति।।

20) मोह रहित इस कर्म से, परम सिद्धि हो प्राप्त।
जनक आदि के कर्म भी, मुक्ति हेतु पर्याप्त।।

21) श्रेष्ठ पुरुष को देख के, करें आचरण लोग।
उनके दिव्य प्रमाण से,करते हैं जन भोग।।

22) तीन लोक में कुछ नहीं, करने प्राप्त अप्राप्त।
सब कुछ पाना व्यर्थ भी, पाना भी पर्याप्त।।

23) फिर भी करता कर्म मैं, चूँकि हुआ मैं रेख।
कर्म करे मानुष सदा, पार्थ मुझे ही देख।।

24) कर्म नहीं मैं जो करूँ, मानवता हो नष्ट।
संकरता उत्पन्न हो, सकल प्रजा हो भ्रष्ट।।

25) जन संग्रह के हेतु ही, तेरा है ये धर्म।
करता जा हे पार्थ तू, अनासक्त हो कर्म।।

26) ज्ञानी जन करते रहें, भली–भाँति सत्कर्म।
तो अज्ञानी जान लें, परमात्मा का मर्म।।

27) होते सारे काम हैं, केवल मुझसे जान।
अहंकार जन क्यूँ करे, खुद को कर्ता मान।।

28) गुण ही गुण में लिप्त है, जाने जो जन पार्थ।
गुण या कर्म विभाग को, होते जान कृतार्थ।।

29) ज्ञानी उनको त्याग दे,जो बनते अज्ञान।
जो डूबे आसक्त हो, मन्द बुद्धि वो जान।।

30) पार्थ सुनो इस चित्त को, मुझ पर करके शुद्ध।
मोह रहित होकर करो, मेरे प्रिय तुम युद्ध।।

31) दोष दृष्टि से मुक्त हो,जो जन करते काम।
वो ही श्रद्धा युक्त हो, मुक्त हुए निज धाम।।

32) जो मुझको दोषी कहे, चले नहीं कुछ जोर।
ज्ञानी मोहित मूर्ख वो, नष्ट हुआ हर ओर।।

33) चेष्टा करते हैं सभी, अपने गुण अनुरूप।
उस जन से हठ क्या करें, जो समझे खुद भूप।।

34) राग द्वेष हर कर्म में, लिप्त रहें भरपूर।
विघ्न बनें शुभ मार्ग के, रहें धर्म से दूर।।

35) मरना उचित स्वधर्म में, उत्तम अपना धर्म।
भय देता परधर्म है, पार्थ सही ये मर्म।।

36) पार्थ कहें केशव कहो, क्यूँ करता जन पाप।
किससे प्रेरित हो करे, नष्ट कर्म जन आप।।

37) कर्म रजोगुण लिप्त ये, पैदा करता क्रोध।
भोगी पापी कर्म ये, है जीवन अवरोध।।

38) धुआँ ढाँकता अग्नि को, दर्पण को ज्यों धूल।
जेर ढंके ज्यों गर्भ को, काम ढंके त्यों मूल।।

39) काम रहा बैरी सदा, क्षीण करे यह ज्ञान।
काम पूर्ण होता नहीं, चंचल हृदय विधान।।

40) इंद्रिय मन वो बुद्धि तो, बसे काम में आन।
जीवात्मा मोहित करे, काम वसी यह ज्ञान।।

41) हे अर्जुन इस काम को, भीतर अपने मार।
हर लेता यह ज्ञान को, खुद का कर उद्धार।।

42) इंद्रिय स्थूल शरीर से, मन इंद्रिय है श्रेष्ठ।
मन से उत्तम बुद्धि है, आत्मा सबसे ज्येष्ठ।।

43) मन को वश कर बुद्धि से, कामरूप को मार।
यह ही तेरा शत्रु है, यह ही जीवन खार।।

□□□

किया है दूर जो हर मोह तो अपना बना लेना।
सुनो हे श्याम कहता पार्थ हिय से ही लगा लेना।।
बड़ा अज्ञान था भीतर नहीं थी रोशनी मन में।
रहा संसार में डूबा न था उद्देश्य जीवन में।
किया पावन मुझे तो अब खुदी में ही मिला लेना।
किया है.....

मुझे दी भेंट शब्दों की सुनाया सार जीवन का।
न अभिलाषा रही अब शेष हटाया भार जीवन का।
दिखे रण भूमि छूटे देह जो खुद में समा लेना।
किया है.....

उठाता पार्थ है अब शस्त्र मोहन एक विनती है।
बताओ मर्म गीता का अभी ये गेह सुनती है।
समय का चक्र रोको ज्ञान दे लीला रचा लेना।
किया है.....

अध्याय–4

1) नाथ कहें यह पार्थ से, अति दुर्लभ यह मर्म।
प्रथम सुनाया सूर्य को, मैंने उत्तम कर्म।।

2) रवि ने यह मनु से कहा, सुन मनु उत्तम ज्ञान।
मनु कहते इक्ष्वाकु से, भली–भाँति यह जान।।

3) बहुत काल बीते सुनो, लुप्त हुआ यह ज्ञान।
परंपरा यह खो गई, फैला पार्थ अज्ञान।।

4) पार्थ पुरातन सत्य ये, कहता हूँ मैं आज।
चूँकि भक्त तुम प्रिय मुझे, इसी हेतु सुन राज।।

5) जन्मे तुम इस काल में, हे केशव हे नाथ।
कैसे रवि से कह गए, थे कब मनु के साथ।।

6) जन्म मरण बहु बार हों, तुम इससे अंजान।
आते बारम्बार हैं, हम तुम इसको मान।।

7) अविनाशी हूँ किंतु मैं, आता बारम्बार।
प्रकट योगमाया करूँ, ले जीवन आधार।।

8) होती है जब–जब यहाँ, हानि धर्म की घोर।
तब–तब हे भारत सुनो, लाता मैं नव भोर।

9) करने शुभ हर साधु का, करने धर्म यथार्थ।
सद्‌गुण के उद्धार को, जन्मा हूँ मैं पार्थ।।

10) जो जन मेरे तत्व को, लेते सच में जान।
वो मुझमें आकर मिलें, परम सत्य यह मान।।

11) भजें भक्त जिस भांति ये, भजे भांति उस श्याम।
पार्थ परस्पर प्रीत ये, चलती है अविराम।।

12) हर मानव इस लोक में, पूजे देव अनेक।
इससे मिलती सिद्धि है, शीघ्र और अतिरेक।।

13) चार वर्ण मैंने रचे, लेकर कर्म विभाग।
सृष्टि रचयिता पार्थ मैं, मुझको सुनकर जाग।।

14) कर्ता मैं हर कर्म का,वरन अकर्ता मान।
मैं ही कर्ता पूर्ण हूँ, अविनाशी मैं जान।।

15) कर्म फलों की कामना, मुझमें है कब लिप्त।
तत्व मुझे जो जानते, होते बंधन–रिक्त।।

16) मोक्ष मार्ग जो चाहते,वो करते यह कर्म।
पूर्वज भी इन कर्म से, जान गए मम मर्म।।

17) निर्णय कर्म–अकर्म का, कब कर पाता ज्ञान।
कहता हूँ मैं इसलिए, कर्म बंध को जान।।

18) कर्म स्वरूप को जान लो, जान विकर्म स्वरूप।
जानो पार्थ अकर्म भी, कर्म गहन ज्यों कूप।।

19) देखे कर्म अकर्म में, माने कर्म अकर्म।
बुद्धिमान वह मनुज जो, जान गया यह मर्म।।

20) जो जन अपने कर्म को, शुरू करे निःस्वार्थ।
ज्ञान रूप की अग्नि से, कर्म दहे जो पार्थ।।

21) जो फल की आसक्ति का, कर देता है त्याग।
जो खुद में संतुष्ट है, रखे नहीं अनुराग।।

22) जीत गया जो इंद्रियाँ, तज कर सारे भोग।
कर्म करे तन मात्र जो,मान पूर्ण संयोग।।

23) हर पल जो संतुष्ट है, जिसका सब पर्याप्त।
जो ईर्ष्या से मुक्त है, जिसको तप है प्राप्त।।

24) इच्छाएँ सब नष्ट हैं, तज बैठा अभिमान।
कर्म करे जो यज्ञ सा, रखे सत्य का ज्ञान।।

25) ब्रह्म रूप कर्ता बने, ब्रह्म रूप जब यज्ञ।
ब्रह्म कर्म जब हो क्रिया, फल समझे जब प्रज्ञ।।

26) तब जाकर प्राणी मुझे, कर लेता कुछ प्राप्त।
फिर प्राणी के चित्त से, होता मोह समाप्त।।

27) कुछ तप से कुछ द्रव्य से, जन करते हैं यज्ञ।
कुछ वृत से कुछ ज्ञान से, कुछ तज के सर्वज्ञ।।

28) कुछ अपान में प्राण से, कुछ तो प्राण अपान।
कुछ जन प्राणायाम से, यज्ञ करें कुछ ज्ञान।।

29) कुछ नियमित आहार से,करते साधक यज्ञ।
कुछ पापों के नाश को, कुछ पाने को प्रज्ञ।।

30) शेष बचे जो यज्ञ से, अमृत उसको जान।
सत्य सनातन ब्रह्म को, तू ऐसे पहचान।।

31) यज्ञ कभी करता नहीं, वो ही पाता शोक।
सुखदायी रहता नहीं, उसको फिर परलोक।।

32) वेदो में वर्णित हुए, यज्ञों के बहुकृत्य।
कर्म बंध से मुक्त हो, अनुष्ठान कर दिव्य।।

33 द्रव्यमयी उस यज्ञ से, ज्ञान–यज्ञ यह श्रेष्ठ।
ज्ञान रूप में डूब के, होते हैं जन ज्येष्ठ।।

34) ज्ञान–तत्त्व को जानने, जा ज्ञानी के पास।
पार्थ दण्डवत हो वहीं, जहाँ ज्ञान हो खास।।

35) कर लेना तुम प्रार्थना, लेकर प्रार्थी–वेश।
प्रश्न ज्ञान के पूछना, देंगे वो उपदेश।।

36) ज्ञान विधा को जान के,छूटेगा सब मोह।
पाकर मुझको पार्थ तू , जानेगा मम टोह।।

37) पापी भी हो पार्थ तू, तो भी होगा पार।
ज्ञान रूप की नाव से, मधुर बने हर खार।।

38) ईंधन को ज्यों अग्नि ये, कर देती है भस्म।
वैसे ही शुभ ज्ञान से, छूटे पापी रस्म।।

39) पावन इस संसार में, नहीं ज्ञान सम और।
अन्तः करण उतार ले, पा ले वो जन ठौर।।

40) जो जन श्रद्धावान है, पा लेगा वो ज्ञान।
ज्ञान मिले अविलम्ब जो, मिल जाते भगवान।।

41) अविवेकी परमार्थ से, भ्रष्ट रहे हर हाल।
हर क्षण उसको घेरता, भ्रम का माया जाल।।

42) कर्म नहीं बाँधे उसे, करता जो भ्रम–नाश।
जो खुद में ही लिप्त है, उसे मिले परिहास।।

43) भरत वंश के पार्थ हे, पाकर ज्ञान विवेक।
सज्ज खड़ा हो युद्ध को,तज दे भ्रम अतिरेक।।

अध्याय–5

1) अर्जुन कहते कृष्ण से, प्रकट करो यह तथ्य।
कर्म श्रेष्ठ है योग से, बोलो केशव सत्य।।

2) कहते हो मुझसे कभी, कर्म श्रेष्ठ है पार्थ।
कहते तुम केशव कभी, संन्यासी परमार्थ।।

3) जिससे हो कल्याण वो, बतला दो वह काम।
निश्चित साधन से करो, उज्ज्वल मेरा नाम।।

4) केशव कहते पार्थ ये, दोनों उत्तम काम।
कर्म योग आसान है, इसमें है आराम।।

5) आकाँक्षा जिसमें नहीं, बसा नहीं है द्वेष।
पार्थ मुक्त हर हाल वह, है द्वन्द नहीं शेष।।

6) दोनों का फल एक है, दोनों को प्रभु प्राप्त।
पूर्ण रूप यदि लिप्त हो, एक मार्ग पर्याप्त।।

7) एक दिशा में ही बढ़े, चुनकर मानुष राह।
दोनों का फल एक है, निश्चित हो बस चाह।।

8) कर्मयोग करते हुए, लेता जो सन्यास।
सुगम ब्रह्म के मार्ग का, करता जो अभ्यास।।

9) मन को अपने वश करे, जीतेन्द्रिय हो शुद्ध।
जिसके मन मे छल नहीं, बन जाए वो बुद्ध।।

10) ज्ञाता हैं जो तत्व के, लेते हैं वो मान।
कर्ता कोई और है, उनको है संज्ञान।।

11) करती हैं नित इन्द्रियाँ, अपना–अपना काम।
रख लें मन ये धारणा, ज्ञानी–ध्यानी आम।।

12) कमल कभी डूबे नहीं, सर में जो हो नीर।
पाप लिप्त होते नहीं, वैसे ही मति धीर।।

13) तज कर निज आसक्ति को, करते केवल कर्म।
फल की चिंता त्याग के, ज्ञानी–निज पथ धर्म।।

14) रखकर मन में कामना, होते पुरुष सकाम।
फल में रख आसक्ति वो, पाते कब विश्राम।।

15) योगी को ये चाहिए, करता जाए कर्म।
मन से त्यागे कर्म को, सुखी रहे निज धर्म।।

16) आत्मा कर्तापन नहीं, प्रकृति कराती मात्र।
रचना यह फल की नहीं, बना रहे जन पात्र।।

17) सर्वव्यापी गेह में, ग्रहण करे कब पाप।
शुभ कर्मों को भी नहीं, ग्रहण करे कर जाप।।

18) मोहित हो अज्ञान से, रखते फल की चाह।
भटके जन निज पुण्य को, अपनाकर सुख राह।।

19) जिनका भ्रम टूटा यहाँ, हुआ प्रकाशित ज्ञान।
रवि सी उसका गेह भी, रोशन होता मान।।

20) जिसका भी मन हो गया, ब्रह्म रूप हे पार्थ।
जिसने अपनी बुद्धि से, प्राप्त किया परमार्थ।।

21) ऐसे जन संसार में, कर निष्ठा पर्याप्त।
तोड़ बँध ये मोह का, करे परम गति प्राप्त।।

22) ऐसे ज्ञानी जन सदा, देखें सब सम रूप।
पशु, जन, राक्षस एक से, दिखते मूल स्वरूप ।।

23) जिनका मन सम भाव में, निहित रहे हर बार।
प्राप्त करे वो मुक्ति भी, यहीं इसी संसार।।

24) होते जो हर्षित नहीं, व्याप्त नहीं है रोष।
जग में वो स्थिर बुद्धि ही, रह जाते निर्दोष।।

25) बाहर का दम त्याग के, भीतर ले आनंद।
करता फिर जग में वही, अक्षय हिय में बंद।।

26) सुख देतीं जो इंद्रियाँ, विषयों के संयोग।
दुख का है कारण वही, तज दे ऐसे भोग।।

27) जो जन तन रहते करे, काम–क्रोध का त्याग।
वो जन निश्चित योग से,प्राप्त करे अनुराग।।

28) जो योगी जन गेह में, पा लेते हैं ज्ञान।
पा लेता वो ब्रह्म भी, पार्थ सत्य यह मान।।

29) ऋषि जन जो निष्पाप हैं, संशय से हैं मुक्त।
शांत ब्रह्म में लीन वो, हुए ब्रह्म से युक्त।।

30) काम क्रोध से रिक्त हैं, जीत गये जो गेह।
ऐसे योगी के लिए, ब्रह्म रूप सी देह।।

31) विषयों में डूबे नहीं, करते जो नित ध्यान।
प्राण वायु सम तुल्य हैं, जिनको आत्मिक ज्ञान।।

32) मोक्ष परायण मुनि सदा, रहते हैं भय मुक्त।
जीते जो मन बुद्धि को, वही ब्रह्म से युक्त।।

33) मेरे भक्तों ने मुझे, माना है भगवान।
शांति प्रदाता जान के, करते हैं सम्मान।।

□□□

मिली दीक्षा तुम्हीं से श्याम हिय में रोशनी आई।
हुआ है पार्थ गदगद नाथ शिक्षा सत्य की पाई।

रहा डूबा जगत की प्रीत में मैं मोह में आकर।
बसाया द्वेष हिय में एक अपनी पीर में खोकर।
तुम्हीं ने श्याम जीवन में नई ये क्रांति है लाई।
मिली दीक्षा.....

न जाना मोल क्या है यज्ञ का मैं भोग के आगे।
सिखाई रीत तुमने धर्म की तो भाग्य ये जागे।
सुनो केशव हटा दो शीश जो अज्ञानता छाई।
मिली दीक्षा .....

चलो अब साथ मिलकर के चढ़ाई साथ करते हैं।
अधर्मी शोर में केशव सुनहरी तान भरते हैं।
हुआ मैं धन्य हे माधव बजी जो धर्म शहनाई।
मिली दीक्षा .....

अध्याय 6

1) कर्मों के फल त्याग के, अपनाते जो योग।
सन्यासी हैं पार्थ वो, सब संसारी लोग।।

2) त्याग नहीं सकते कभी, जो अपना संकल्प।
वो जन होते ही नहीं, अर्जुन योगी अल्प।।

3) योग प्राप्ति के कर्म में, लिप्त रहें जब प्राण।
संकल्पों की शांति से, होता है कल्याण।।

4) मुक्त रहें जिस काल में, जन के इंद्रिय भोग।
संकल्पों के त्याग से, उस क्षण मिलता योग।।

5) मानव अपना शत्रु है, मानव अपना मित्र।
कर्म करे सच्चे वही, महके बनके इत्र।।

6) जिसने मन जीता वही, मित्र हुआ है आप।
जो मन के वश में रहा, उसका जीवन श्राप।।

7) सुख–दुख में अपमान में, डिगे नहीं जो लोग।
वो अपने शुभ कर्म से, करें ब्रह्म से योग।।

8) जो जन ज्ञान विज्ञान से, तृप्त हुए भ्रम मुक्त।
जिन्हें वस्तु हर सम लगे, वे ही योगी युक्त।।

9) धर्मात्मा, पापी सभी, हैं जिनको समभाव।
मित्र, द्वेष, बैरी रखे, जो समतुल्य लगाव।।

10) आस रहित एकान्त में, आत्मा में जो लीन।
परमात्मा में लिप्त वो, पार्थ रहे कब दीन।।

11) पावन आसन को बिछा, मन को कर एकाग्र।
अंतस मन की शुद्धि को, करिये योग कुशाग्र।।

12) सीधा कर तन सिर गला, ध्यान नासिका ओर।
शांत चित्त हो बैठ जा, प्राणी तू हर भोर।।

13) चित्त लगा मुझमें सदा, करता मेरा ध्यान।
प्राप्त करे आनन्द को, ऐसा निश्चित मान।।

14) नियमित नित आहार हो, नियमित निद्रा भोग।
सिद्ध अनियमित को नहीं, पार्थ कभी भी योग।।

15) सम्यक दिनचर्या रहे, सम्यक हो आहार।
उनके ही जीवन सदा, योग बने आधार।।

16) जो आत्मा में स्थिर रहे, तज दे भोग विलास।
योग युक्त होकर वही, पाता सुख की श्वास।।

17) वायु रहित हर स्थान में, अचल रहे ज्यों ज्योत।
ध्यानी को डिगता नहीं, वैसे ही हर स्त्रोत।।

18) योगी इस अभ्यास से, रहता नित संतुष्ट।
परमानंदी हो सदा, ध्यानी रहता पुष्ट।।

19) इंद्रिय से होकर परे, सूक्ष्म बुद्धि कर प्राप्त।
आत्मा से विचलित नहीं, उसको सब पर्याप्त।।

20) लाभ मिले हर्षित नहीं, दुखित नहीं पा कष्ट।
उसने अपने योग से, मोह किया है नष्ट।।

21) होता है जिस पल यहाँ, जग से परम वियोग।
उस पल को पहचान के, उससे कर संयोग।।

22) उठती जो संकल्प से, उस इच्छा को त्याग।
इंद्रिय सम्यक रूप से, रोक आत्मवत् जाग।।

23) धीरे–धीरे बुद्धि को,कर ले प्रियवर शांत।
रख आत्मा में धैर्यता,चल उसके उपरांत।।

24) चंचल है मन पार्थ ये, भटके बारम्बार।
पकड़ इसे खुद में रमा, रट जीवन का सार।।

25) मुक्त रहे जो पाप से, रजोगुणों से शांत।
वो योगी आनंद से, रहता है एकान्त।।

26) परम ब्रह्म को जान के, पाता है आनन्द।
योगी जो निष्पाप है, खुद आत्मा में बंद।।

27) रखता जो समभाव वो, योगों से है युक्त।
ब्रह्म जिसे सर्वत्र है, वो विषयों से मुक्त।।

28) मुझको सब में देखता, सर्वव्यापी जान।
मैं भी जग भर में उसे, लेता हूँ पहचान।।

29) आत्मरूप होकर भजे, करे सदा गुणगान।
मुझमें ही रहता सदा, कर्म सहित यह मान।।

3व) आत्मा को जो मानता, सब भूतों में एक।
परम श्रेष्ठ योगी वही, वो ही जग में नेक।।

31) हे मधुसूदन पार्थ का, ह्रदय नहीं समभाव।
हिय चंचल है नाथ ये, इसमें है बिखराव।।

32) अति दुर्लभ है कार्य ये, करना हिय वश नाथ।
वायु कैद की भाँति ही, तन–मन करना साथ।।

33) जिसने मन वश में किया, तज के जग के भोग।
प्राप्त उसे ही यत्न से, दुर्लभ शुभ यह योग।।

34) पार्थ नाथ से पूछते, संशय से भरपूर।
उत्तर देकर प्रश्न का, करिए हर भ्रम दूर।।

35) श्रद्धा रखता योग में, वरन नहीं अभ्यास।
विचलित होकर योग से, किस गति करता वास।।

36) छिन्न–भिन्न नभ सा कहीं, हो जाता क्या नष्ट।
धारण करके मोह को, चार ओर से भ्रष्ट।।

37) नाथ आप ही योग्य हैं, दूजा कौन समर्थ।
दूर करे संसय सभी, दे प्रश्नों के अर्थ।।

38) मेरे वचनों को सुनो, प्रियवर मेरे आज।
दुर्गति वो पाता नहीं, करता जो शुभ काज।।

39) आत्मा के उद्धार को, करता नित्य प्रयास।
पुण्यवान के लोक में, बरसों करता वास।।

40) बरसों के पश्चात वो, जन्मे सज्जन द्वार।
शुद्ध आचरण का जहाँ, मिले उसे आधार।।

41) योगी के घर जन्म ले, बैरागी हर बार।
लेकिन ऐसा जन्म तो, दुर्लभ इस संसार।।

42) पूर्व जन्म की बुद्धि से, सिद्ध बने अनायास।
पूर्व सिद्धि की प्राप्ति से, करता और प्रयास।।

43) योग विधा जिज्ञासु भी, कर कर्मों को पार।
अपने नित अभ्यास से, करता निज उद्धार।।

44) जन्मों के संस्कार से, होकर के संसिद्धि।
पाप रहित हो शीघ्र ही, प्राप्त करे वो रिद्धि।।

45) योग श्रेष्ठ है ज्ञान से, समझो प्यारे पार्थ।
योगी हो तुम इसीलिए, तज के अब निज स्वार्थ।।

46) योगी श्रद्धावन जो, भजता मुझको रोज।
मुझे श्रेष्ठतम मान्य वो, जिसमें योगी ओज।।

□□□

खुले ये भाग्य हे केशव मुझे जो योग समझाया।
नहीं था योग्य मैं माधव मुझे सच मार्ग दिखलाया।
खुले हैं .....

घिरा था मोह में जग की मुझे परवाह होती थी।
रहा उलझा जगत की प्रीत में ये आँख रोती थी।
जगे हैं भाग्य मधुसूदन तुम्हारा दास कहलाया।
खुले हैं .....

चुना मैंने नहीं तुमको रचाया खेल ये तुमने।
अहं का बीज बोया था स्वयं को वीर कह हमने।
खिलौने हम निरंजन देख ये मन आज घबराया।
खुले हैं .....

तुम्हीं हो सूर्य तुम ही चंद्र तुम ही देव दानव में।
तुम्हीं आकाश अचला हो तुम्हीं हो कृष्ण मानव में।
हटा परदा अभी तो रूप कण–कण श्याम का पाया।
खुले हैं .....

अध्याय–7

1) कहते हैं भगवान ये, पार्थ मुझे पहचान।
आत्मरूप बल युक्त हो, सुन देता जो ज्ञान।।

2) कहता हूँ तेरे लिए, तत्वज्ञान का सार।
जिससे बढ़कर है नहीं, ज्ञान शेष संसार।।

3) मनुज हजारों हैं यहाँ, योगी ज्ञानी नेक।
इनमें से मेरे लिए, यत्न करे पर एक।।

4) अष्टविभाजित पार्थ मैं, अपरा रूपी मान।
जीव रूप मेरी परा, चेतन को तू जान।।

5) नभ जल अग्नि वायु धरा, मन बुद्धि अहंकार।
मेरे अपरा रूप के, यह हैं आठ प्रकार।।

6) ऐसा समझो पार्थ मैं, प्रभव प्रलय का मूल।
कोई मुझसे भिन्न है, यह है जग की भूल।।

7) पार्थ एक ही सूत्र में,गुँथा हुआ संसार।
मैं ही हूँ हर सूत्र का, एकमात्र आधार।।

8) मैं ही हूँ रस नीर का, मैं रवि चंद्र प्रकाश।
वेदों का ओंकार मैं, मैं वाणी आकाश।।

9) पुरुषों का पुरुषत्व मैं, मैं अचला की गंध।
मैं पावक का तेज हूँ, मुझसे तप अनुबंध।।

10) पार्थ सनातन बीज मैं, बुद्धिमान की बुद्धि।
हर योगी का योग मैं, संतों की मैं सिद्धि।।

11) मैं बल मैं सामर्थ्य हूँ, सब भूतों का कर्म।
मैं हूँ सारे शास्त्र भी, पार्थ मुझी में धर्म।।

12) मैं या वे मुझ में नहीं, सत्व रजो गुण जान।
पर तू हर उस भाव की, उत्पत्ति मुझे मान।।

13) सात्विक तामस राजसी, भावों से हो युक्त।
प्राणी मुझको भी नहीं, जाने इससे मुक्त।।

14) त्रिगुणमयी माया बड़ी, अद्‌भुत यह संसार।
तर जाता संसार से, करे इसे जो पार।।

15) होकर के मायावशी, करके दूषित कर्म।
मुझको वे भजते नहीं, धरें आसुरी धर्म।।

16) अर्थार्थी जिज्ञासु हैं, कुछ ज्ञानी आचार।
कुछ जन भजते आर्त को, चारों भक्त प्रकार।।

17) मुझको एकीभाव से, भजते जो पर्यंत।
वे ज्ञानी जन श्रेष्ठ हैं, मुझको प्रिय अत्यंत।।

18) यूँ तो सर्व उदार हैं, उत्तम ज्ञानी जान।
ज्ञानी उत्तम इसलिए, भक्ति करे संज्ञान।।

19) वासुदेव सर्वस्व हैं, भक्ति करे यह मान।
दुर्लभ जग में जन्म ले, ऐसा तत्वी ज्ञान।।

20) रख भोगों की कामना, हर लेते हैं ज्ञान।
अन्य देव को पूजते, सत्य नियम यह मान।।

21) पूजें जो जिस देव को, जिसकी जिसमें चाह।
उसकी श्रद्धा स्थिर करूँ, देकर मैं शुभ राह।।

22) मेरे रचित विधान से, बैठे यह संयोग।
उसी देव को पूज के, पाते इच्छित भोग।।

23) पूजें जो जिस देव को, हों उसको ही प्राप्त।
वरन मुझी में हों सदा, मेरे भक्त समाप्त।।

24) बुद्धिहीन कुछ नर यहाँ, जन्मा मुझको मान।
पूजें नित नर भाव से, मुझको मानुष जान।।

25) छिपा योगमाया मुझे, करे नहीं प्रत्यक्ष।
मेरे जन्मे रूप को, लाती नयन समक्ष।।

26) सर्व विदित मुझको सदा, किसका कौन उपाय।
पार्थ मुझे जाने नहीं, भक्ति रहित समुदाय।।

27) द्वंद्व रूप इस मोह से, घिरा सकल संसार।
जग के इस अज्ञान का, काम क्रोध आधार।।

28) काम क्रोध से मुक्त हैं, दृढ़ मुझमें पर्याप्त।
पार्थ यहाँ वे भक्त ही, करते मुझको प्राप्त।।

29) जन्म–मरण से छूटने, करते यत्न हजार।
मेरे ब्रह्म स्वरूप को, जानें इस संसार।।

30) साधिभूत अधिदैव या, या अधियज्ञ समान।
इसी भाँति जो भी भजे, लेता मुझको जान।।

□□□

प्रभव हूँ मैं प्रलय हूँ मैं धरा आधार मैं।
बसा कण में बसा क्षण में सकल संसार मैं।।
ब्रम्ह भी मैं शिवा भी मैं सनातन धर्म मैं।
बहे जो श्वास हिय में मैं मनुज का कर्म मैं।
नियम में सत्य हूँ मैं मंत्र में ओंकार मैं।
प्रभव हूँ .....

बली का बल तपी का तप गुणी का ज्ञान मैं।
पवन का वेग रवि का तेज नभ संधान मैं।
यहाँ भी मैं वहाँ भी मैं जगत का सार मैं।
प्रभव हूँ .....

विभाजित अष्ट रूपों में दिखाई दे रहा।
वचन में पार्थ मैं ही तो सुनाई दे रहा।
युगों के अंत में आकर भरूं हुंकार मैं।
प्रभव हूँ .....

अध्याय–8

1) क्या होता आध्यात्म ये, होता है क्या कर्म।
अभिभूत दैव क्या भला, कहो ब्रह्म का मर्म।।

2) कौन यहाँ अधियज्ञ है, कैसे हो पहचान।
अंत समय कैसे सभी, लेते तुझको जान।।

3) अक्षर ही तो ब्रह्म है, त्याग भावना कर्म।
जीवात्मा आध्यात्म है, पार्थ यही जग मर्म।।

4) धर्म तत्व अधिभूत वे, उद्‌भव हो या नाश।
हिरण्यमय अधिदैव हैं, मैं अधियज्ञ स्व श्वांस।।

5) अंतकाल जो भी भजे, मुझको रख अनुराग।
पा लेता मुझको वही, करके तन का त्याग।।

6) अंत समय जिस भाव को, करता है जन याद।
उसी भाव से जन्मता, तन तजने के बाद।।

7) अतः युद्ध तुम अब करो, करके मुझको याद।
मुझमें खो तन बुद्धि से, तज दे हर उन्माद।।

तन मन के अभ्यास से, कर चिंतन पुरजोर।
करता मेरा ध्यान जो, आता मेरी ओर।

9) जो सर्वज्ञ अनादि हैं, जान अचिन्त्य स्वरूप।
शुद्ध सच्चिदानंद जो, जिसमें रवि सी धूप।।

10) केंद्रित भृकुटी मध्य जो, भक्ति युक्त हो जन्य।
पाकर मुझको पार्थ वो, हो जाता है धन्य।।

11) वर्णन मेरे रूप का, करते जो निज ज्ञान।
उसी परम पद रूप को, कहता हूँ मैं जान।।

12) सभी इन्द्रियाँ रोक के, कर मस्तक में प्राण।
उच्चारण कर ओम का, करता निज कल्याण।।

13) उच्चारण कर ओम का, स्मरण करे मम नाम।
वही परम गति प्राप्त कर, आता मेरे धाम।।

14) नित्य याद मुझको करे, होकर योग अधीन।
सहज सुलभ मैं हूँ उसे, जो है मुझमें लीन।।

15) परम सिद्धि को प्राप्त हो, होकर मुझमें युक्त।
पुनर्जन्म से छूटता, होकर तन से मुक्त।।

16) ब्रह्मलोक पर्यंत हैं, पुनरावर्ती लोक।
पर मुझ तक आकर मिले, पुनर्जन्म को रोक।।

17) ब्रह्मा का दिन एक तो, है चतुर्युग हजार।
योगी जन रखते सदा, इसका सत्य विचार।।

18) ब्रह्मा के दिन से उगे, ब्रह्म रात्रि से अंत।
ब्रह्मा सूक्ष्म शरीर से, चलते युग पर्यंत।।

19) पार्थ भूत समुदाय ये, हो दिन में उत्पन्न।
रात्रि काल में लीन हो, जीवन कर सम्पन्न।।

20) पर इस सब से है परे, दिव्य सनातन पार्थ।
नष्ट नहीं होता कभी, ऐसा ही परमार्थ।।

21) पार्थ भाव अव्यक्त वो, अक्षर जिसका नाम।
सनातनी उस भाव से, प्राप्त करें मम धाम।।

22) जिसके अंतर्गत सभी, जिससे यह संसार।
उस परमात्मा के लिए, भक्ति सनातन सार।।

23) सुन गति का वह मार्ग जो, पुनर्जन्म का सार।
कौन रुके आता नहीं, कौन पुनः संसार।।

24 अ) पार्थ सुनो जिस मार्ग में, शुक्ल पक्ष सुर वास।
अभिमानी ज्योतिर्मयी, वही ब्रह्म अवकाश।।

24 ब) उतरायण छः माह जो, रहे अग्नि से युक्त।
योगीजन उस काल में, होते तन से मुक्त।

25 अ) पार्थ वरन जिस मार्ग में, बसे धूमाभिमान।
छह माह दक्षिणायनी, उनका भी क्रम जान।।

25 ब) कर्म सकामी भोग के, चले चंद्र की ज्योत।
शुभ कर्मों को भोग के, पाता जग का स्त्रोत।।

26) कृष्ण शुक्ल दो मार्ग से, होते जीव समाप्त।
होते फिर इस मार्ग से, जन्म मरण को प्राप्त।।

27) जान पार्थ इस मार्ग को, रहो मोह से मुक्त।
सभी काल समबुद्धि से, रहो योग से युक्त।।

28) योगीजन इस राज को,जान करें तप दान।
पुण्यफलों के यज्ञ से, फिर आते मम स्थान।।

□□□

संशय से हिय घिर गया, भ्रम का बुनता जाल।
मार्ग दिखा दे मुक्ति का, नाथ बद्रीविशाल।।
संशय .....

क्या होता अध्यात्म है, ब्रह्म मार्ग है कौन।
पार्थ घिरा भ्रम जाल में, नाथ खड़े क्यूँ मौन।
कौन मुक्ति पाता यहाँ, कौन फँसे जंजाल।
संशय .....

अक्षर ही तो ब्रह्म है, त्याग भावना कर्म।
शुक्ल कृष्ण दो मार्ग हैं, जन्म मरण के मर्म।
शुक्ल पक्ष में स्वर्ग है, कृष्ण पक्ष भव काल।
संशय .....

उच्चारण कर ओम का, स्मरण करो मम नाम।
पार्थ कर्मफल यज्ञ से, प्राप्त करो मम धाम।
कृष्ण विमुख होकर नहीं, मार्ग मिले खुशहाल।
संशय .....

अध्याय–9

1) दोषरहित प्रिय भक्त से, बोल उठे भगवान।
मुक्त करे संसार से, पार्थ सुनो वह ज्ञान।।

2) विद्याओं में श्रेष्ठ जो, अति पावन प्रत्यक्ष।
धर्मयुक्त साधन कहूँ, आओ पार्थ समक्ष।।

3) हे परंतपी धर्म में, जो हैं श्रद्धा हीन।
प्राप्त मुझे होते नहीं, काल–चक्र हों लीन।।

4) निराकार मुझ ब्रम्ह से, है सारा संसार।
वास नहीं करता मगर, मैं ही हूँ आधार।।

5) मैं सबका पोषण करूँ, करता मैं उत्पन्न।
भूतों में बसता नहीं, वरन करूँ संपन्न।।

6) जन्मा मम संकल्प से, निहित मुझी में जान।
नभ से जन्मी वायु ज्यों, विचरे उसमें जान।।

7) होते मुझमें लीन हैं, भूत कल्प के अंत।
कल्प आदि मैं फिर रचूं, कल्प अंत पर्यंत।।

8) हो परतंत्र स्वभाव से, पूर्ण भूत समुदाय।
आता बारम्बार है, कर्मों के पर्याय।।

9) आसक्तिरहित कर्म हों, या कर्म उदासीन।
बाँध नहीं सकता मुझे, होकर मुझमें लीन।।

10) अधिष्ठाता सकाश से, रचा पूर्ण जग देख।
सर्वजगत मेरा रचा, घूमे जो यह रेख।।

11) तन धारण जो मैं करूँ, तुच्छ कहे संसार।
मनुज रूप मैंने लिया, करने जग उद्धार।।

12) व्यर्थ कर्म आशा लिए, व्यर्थ ज्ञान विक्षिप्त।
प्रकृति धरते मोहिनी, रहें बदी में लिप्त।।

13) पर जो मुझको जानते, भजते मन से युक्त।
जान अक्षरस्वरूप को, रहते संशय मुक्त।।

14) दृढ़ निश्चय रख भक्त ये, भजते मेरा नाम।
बार–बार करते नमन, ध्यान करें अविराम।।

15) कुछ भजें ज्ञान यज्ञ से, ले रूप निराकार।
कुछ भजते साकार को, अलग–अलग अवतार।।

16) मैं कृतु मैं औषधि स्वधा, मैं हूँ धृत मैं मंत्र।
मैं पावक मैं यज्ञ हूँ, हवनरूप मैं तंत्र।।

17) मात–पिता ऋग्वेद मैं, मैं पावन ओंकार।
सामवेद का ज्ञान मैं, यजुर्वेद का सार।।

18) प्रभव–प्रलय आधार मैं, अविनाशी मैं जान।
जग का पालनहार मैं, जग का स्वामी मान।।

19) तपता हूँ रवि रूप में, मैं ही हूँ बरसात।
मैं ही अमृत–मृत्यु भी, मैं ही हूँ हर बात।।

20) तीन वेद के ज्ञान से, करते कर्म सकाम।
जाते करके यज्ञ वो, पुण्य स्वर्ग के धाम।।

21) पुण्य क्षीण होकर करें, मृत्यु लोक प्रस्थान।
कामी बारम्बार ही, आते ऐसा मान।।

22) नित्य निरन्तर जो भजे, पाते मुझे सप्रेम।
भजे निष्कामभाव जो, पाते मुझे सप्रेम।।

23) यद्यपि श्रद्धा युक्त हो, भजें देव अतिरेक।
सब मुझको ही पूजते, बन अज्ञानी एक।।

24) यज्ञ भोक्त संपूर्ण मैं, मैं ही स्वामी जान।
पुनर्जन्म को प्राप्त हों, रखते जो अज्ञान।।

25 अ) पार्थ सुनो अब प्राप्ति का, कहता मर्म विचित्र।
देव भजे से देवता, पितर भजे से पितृ।।

25 ब) भूत भजे से भूत को, करते हैं जन प्राप्त।
भक्त मुझी तक आ मिलें, होकर देह समाप्त।।

26) भक्त मुझे अर्पित करें, प्रेम वशी जो भोग।
फल जल पुष्पादि का, करता मैं उपयोग।।

27) पार्थ मुझे अर्पित करो, अपना सारा कर्म।
खान पान या दान हो, हवन यज्ञ या धर्म।।

28) अर्पित कर मुझको सभी, कर्म बंध हो मुक्त।
सब कुछ मुझको सौंप दे, हो सन्यासी युक्त।।

29) कोई प्रिय–अप्रिय नहीं, सब मुझको समरूप।
पर भक्तों के संग मैं, रहता ज्यों रवि धूप।।

30) व्यभिचारी के भाव में, यदि है भक्ति अनन्य।
साधु मानने योग्य वो,यदि है निश्चय धन्य।।

31) भक्ति मार्ग से शीघ्र ही, हो जाता उत्कृष्ट।
पार्थ कभी होता नहीं, कृष्ण भक्त का नष्ट।।

32) स्त्री, पापी या शूद्र हो, भले वैश्य, चांडाल।
मेरी शरणागति मिले, भक्तों को हर हाल।।

33) पुण्यशील ब्राह्मण करें, पूजन जप पर्याप्त।
पार्थ भजन के मार्ग से, कर तू मुझको प्राप्त।।

34) भक्त बनो मन को लगा, करके नित्य प्रणाम।
मुझको पाने के लिए, जप लो मेरा नाम।

□□□

सुनो हे पार्थ तोड़ो जाल माया के चले आओ।
कहूँ मैं सत्य तुमसे मर्म जीवन का न घबराओ।
शरण मेरी सदा रह कर्म फल अर्पित मुझे करना।
न रखना लोभ माया में कभी मुझको न बिसराना।
निरन्तर जाप से मेरी शरण में पार्थ हिय लाओ।
कहूँ मैं .....

फँसो मत मोह में अर्जुन चलो अब सारथी को सुन।
न कोई है किसी का इस जगत मैं सिर्फ मुझको चुन।
करो अब भक्ति मेरे नाम की मुझमें बसे जाओ।
कहूँ .....

सखा तुम प्रिय मुझे ज्यादा तभी ये मर्म कहता हूँ।
रखो विश्वास मुझ पर तुम सनातन धर्म कहता हूँ।
करो अब युद्ध तुम रण में क्षत्री का धर्म अपनाओ।
कहूँ मैं .....

श्रद्धांजलि शुक्ला 'अंजन'

जन्मतिथि	:	02–07–1984
शिक्षा	:	एम.एस.सी., बी.एड.
पति	:	श्री कमलेश शुक्ला
सम्प्रति	:	माध्यमिक शिक्षिका
रुचि	:	पठन-पाठन-लेखन
प्रकाशित काव्य कृतिः		पूर्णांजलि (काव्य संग्रह)
अन्य	:	अनेक समाचार-पत्र/पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। कई साझा संकलनों में रचनाएँ प्रकाशित। कई साहित्यिक संस्थाओं में सहभागिता
पता	:	एलआईजी-70, विश्राम बाबा, कटनी, मध्य प्रदेश

flipkart
amazon
utkarshprakashan.in
Google Books

उत्कर्ष प्रकाशन

ISBN 978-81-969583-0-5

₹ 150.00